अथर्ववेदीय रामपूर्वतापनीय उपनिषद् 'राम' शब्द के विविध अर्थ प्रस्तुत करती है। इसने 'राति राजते वा महींस्थितः सन् इति रामः' की धारणा का प्रचार किया है। शक्ति, शील और सौन्दर्य के आधार पर यहाँ राम शब्द की व्युत्पत्ति की गयी है। संस्कृत की 'रा' धातु का अर्थ दान देना होता है। राम की दानशीलता तथा विश्व में हर तरह की पीडा को, साधु प्रकृति के मनुष्यों के भीतर से निकाल देने के स्वभाव के कारण 'राम' शब्द का 'रा' अक्षर 'रा' धातु से लिया गया है। सज्जनों के सब अभावों तथा उनकी हर तरह की पीडाओं को दूर करने वाला 'राम' होता है। संसार को सुखी बनाने के लिए, उसके अभावों को दूर करने के लिए राम ने अपने को जीवन भर तप की अग्नि में तपाया। दूसरों के लिए तप की अग्नि में अपनी चेतना को तपाना ही राम का शील था। इस शील के विकास के लिए जिस अनंत शक्ति की आवश्यकता होती है, वह राम में थी।

संस्कृत की 'राज्' धातु का अर्थ 'चमकना' होता है। राम तेजस्वी, प्रतापवान् तथा रूप-सौन्दर्य और कर्म-सौन्दर्य के समाहित स्वरूप थे। राजा में इन्हीं गुणों की आवश्यकता

होती है। प्रताप और सौन्दर्य के पुंजीभूत रूप राम, शक्ति, शील और सौन्दर्य को एक साथ अपने व्यक्तित्व में धारण किये हुए एक आदर्श राजा थे। संस्कृत की इन दो धातुओं के प्रारंम्भक अक्षर 'रा' से 'राम' शब्द के 'रा' अक्षर की उत्पत्ति रामपूर्वतापनीय उपनिषद् मानती है। 'मही' शब्द के 'म' से राम का 'म' बना हुआ है। 'मही', पृथ्वी पर राम की यह आदर्श लीला प्रसारित हुई थी। वे दुष्टों और राक्षसों का मरण बन कर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे। इसीलिए 'राक्षस' के 'रा' और 'मरण' के 'म' से भी यह उपनिषद् राम शब्द की व्युत्पत्ति समझाती है। अभिराम (सुन्दर) शब्द से भी 'राम' शब्द की व्युत्पत्ति इस उपनिषद् में दी गयी है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी सौन्दर्य के द्वारा जगत् को आकर्षित कर लेने वाला, राम का गुण व्यंजित होता है। राहु के समान, मनसिज (चन्द्रमा) को ग्रस्त कर लेने वाला अर्थ बतलाने के लिए भी 'राहु' से 'रा' और 'मनसिज' से 'म' अक्षर को ले कर इस उपनिषद् ने 'राम' शब्द की योजना की है। जिस तरह राहु, मनसिज (चन्द्रमा) को ग्रस्त कर लेता है उसी तरह अपने अनासक्तिमय स्वभाव से राम ने मनसिज (काम) को पराजित कर लिया था। अपनी इसी अनासक्तिमय लोकसेवा से राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। इस प्रकरण में मनसिज शब्द का चन्द्रमा के पर्याय की तरह प्रयोग है। इसका कारण यह है कि यजुर्वेद के पुरुषसूक्त में चन्द्रमा, विराट् पुरुष के मन से उत्पन्न होने वाला माना गया है—'चन्द्रमा मनसोजातः'‡।

राक्षसों को मनुष्य-रूप धारण करके दण्ड देने के कारण भी 'राम' नाम की व्युत्पत्ति इस उपनिषद् ने समझायी है। 'राक्षस' के 'रा' और 'मनुष्य' के 'म' से यह उपनिषद् 'राम' शब्द को बना हुआ मानती है।

राज्य पाने वाले महीपालों को अपने आदर्श शील से आदर्श व्यक्ति बनाने वाले पुरुषोत्तम को 'राम' का नाम, यह उपनिषद् देती है। इस स्थिति में 'राज्य' से 'रा' और 'महीपाल' से 'म' को ले कर इस उपनिषद् में 'राम' शब्द की योजना की गयी है।

इस तरह राम की समग्रता के आधार पर यह उपनिषद् 'राम' शब्द के अर्थ को व्युत्पत्ति के आधार पर समझाती है। इन सब व्युत्पत्तियों के समाहित उपसंहार के रूप में यह उपनिषद् मानती है कि ज्ञानी राम के नाम के उच्चारण से ज्ञान, अनासक्तिमय राम के शील के ध्यान से वैराग्य तथा परम सुन्दर और समग्र ऐश्वर्यों की निवासभूमि उनके सुन्दर शरीर की मूर्ति की उपासना से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

इस प्रकरण के अंत में 'राम' का शुद्ध दार्शनिक अर्थ बताते हुए यह उपनिषद् कहती है कि शाश्वत आनन्द के रूप, विश्व के समग्र चैतन्य के केन्द्र, जिस सनातन ब्रह्म में, ध्यानमग्न हो कर योगी लोग परमानन्द में लीन हो कर, रमण करते हैं, वह परब्रह्म परमात्मा ही राम है, और वही पृथ्वी पर राम के नाम से अवतीर्ण होता है। यहाँ

---

‡ यजुर्वेद, अध्याय ३१, मंत्र १२।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'रम्' (खेलना) धातु से विराट् ब्रह्म राम की व्युत्पत्ति करके अनंत की आनन्दमयी अभेदानुभूति का प्रतिपादन किया गया है। विराट् के अनंतव्यापी एकत्व की अनुभूति में खो जाना ही वेदान्ती दार्शनिक की मुक्ति है। इसी मुक्ति-तत्त्व को यह उपनिषद्, 'राम' शब्द के आधार पर, इस प्रकरण के अन्त में समझाती है‡।

इस उपनिषद् की यह मान्यता है कि परम चैतन्यमय, अद्वितीय, पांचभौतिक अवयवयुक्त शरीर में न बँधने वाला ब्रह्म ही भक्तों की इच्छा-पूर्ति के लिए, उनके स्नेह से आकृष्ट हो कर, निराकार होने पर भी चैतन्यमय नराकार शरीर धारण कर लेता है†।

यह उपनिषद् इस तथ्य का प्रचार करती है कि सब देवता भगवान् राम के स्वरूप में ही अन्तर्भूत हैं। वे ही पुरुष या स्त्री रूप में प्रकट हुआ करते हैं। वे ही भगवान् की सेवा किया करते हैं। जिस प्रकार हाथ, पैर इत्यादि अंग सम्पूर्ण शरीर की सेवा करते हुए उस शरीर के ही भाग हैं, और उस शरीर से अलग नहीं हैं, उसी प्रकार ये सब देवता भगवान् की सेवा करते हैं और अभेद-सम्बन्ध से उन्हीं के अंग हैं। ये उनसे पृथक् नहीं हैं। ये ही देवता भगवान् के रूप के अनुसार उनके चार, छह, आठ, दस, बारह, सोलह या अट्ठारह हाथ बन जाते हैं और उन हाथों में रहने वाले शंख इत्यादि का रूप धारण कर लेते हैं। ये ही देवगण भगवान् के विश्वरूप या विराट् रूप में उनकी सहस्रों भुजाओं के रूप में परिणत हो जाते हैं। भगवान् के इन सभी रूपों के रंग और वाहन इत्यादि पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। यह देवताओं के ही रूपान्तर से सम्भव होता है। ये ही देवता भगवान् की विविध शक्तियों और सेनाओं के रूप में भी परिणत हो जाते हैं। परब्रह्म राम के विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश इत्यादि पंचविध रूपों और उपकरणों का यही रहस्य है§। इसी प्रक्रिया से विराट् राम के सर्वदेवमय रूप की उपस्थापना रामपूर्वतापनीय उपनिषद् करती है।

यह उपनिषद् इस तथ्य को स्वीकार करती है कि 'राम' मन्त्र ब्रह्मा से ले कर वृक्ष तक समस्त जड-चेतन जगत् के ज्ञान से ओतप्रोत है। इसका प्रभाव अनंत है। साधक को इसका ध्यान निरन्तर करना चाहिए। इस मन्त्र के निरन्तर ध्यान से साधक के लिए सब रहस्य प्रकट सत्य के रूप में बदल जाते हैं। कोई बात उससे छिपी नहीं रह जाती। मनन और त्राणन (चिन्तन होने पर रक्षाकारक) के कारण मन्त्र कहलाने वाले शक्तिपुंज मन्त्रों के सब गुण 'राम' मन्त्र में हैं। स्त्री तथा पुरुष रूप में व्यक्त होने वाले भगवान् की उपासना के लिए निर्मित यन्त्र उनके विराट् शरीर का प्रतीक होता है। अतः इस उपनिषद् के अनुसार उनके अनंत शरीर का ध्यान यन्त्र की सहायता से करके उसी यन्त्र की पूजा होनी चाहिए। यन्त्र पर भगवान् के विराट् शरीर का रहस्य अंकित

---

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड १, श्लोक १ से ६ तक। † रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड १, श्लोक ७। § रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड १, श्लोक ८ से १० तक।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहती है; इसीलिए यन्त्रपूजन से उपनिषद् के अनुसार भगवान् का अनंत शरीर पूजित हो जाता है‡।

भगवान् राम स्वयं उत्पन्न होने वाले (स्वभू) तथा शाश्वत हैं। ज्ञानमय प्रकाश के अपने रूप के कारण वे ज्योतिर्मय हैं। रूपवान् होते हुए भी वे देश, काल और वस्तु को अतिक्रान्त करके असीम रूप में भी रहते हैं। वे स्वतः प्रकाशित तथा स्वतन्त्र हैं। अपने नियन्त्रण में रहने वाले त्रिगुणों का उपयोग करके इस व्यक्त जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयावस्था को वे ही संचालित करते रहते हैं। अपने चैतन्य को ले कर वे ही समस्त जीवों के अन्तर्यामी बनते हैं। उनके न रहने पर जीव भी नहीं रह जाता। परमात्मस्वरूप ॐकार का विराट् रूप यह जगत् उन्हीं का रूप है।

अणु-बीज में वट वृक्ष की तरह 'राम्' बीज-मन्त्र में जगत् का सम्पूर्ण विकास अन्तर्निहित रहता है। 'राम्' के 'र्' पर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का निवास रहता है। 'र्' इस त्रिमूर्ति शक्ति से ऊर्जस्वित है। इस 'र्' में इतनी शक्ति है कि त्रिमूर्ति की पूरी शक्ति इसी से प्राप्त होती रहती है। उत्पत्ति, पालन और संहार की शक्तियाँ तथा बिन्दु, नाद और बीज से उत्पन्न रौद्री, ज्येष्ठा और वामा शक्तियाँ 'र्' से ही प्रसूत होती हैं।

र्, आ, अ, म् से 'राम्' का बीज निर्मित होता है। 'र्' रामवाचक तथा आ, अ और म् में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की शक्तियाँ रहती हैं। 'राम्' बीज में प्रकृति-पुरुष-रूप सीता-राम की ही उपासना होती है। इसी 'राम्' बीज से चौदह भुवनों की उत्पत्ति, स्थिति और लय हुआ करते हैं। यह 'राम्' बीज ब्रह्म राम का ध्वनिविग्रह या ध्वनिमय शरीर है।

लीला (माया) के लिए भगवान् राम मानव हो गये। इसी अनंत राम में तदाकार परिणति का प्रचार रामपूर्वतापनीय उपनिषद् करती है। जीव को मुक्ति इसी में है कि वह अपने को श्रीराम ब्रह्म का स्वरूप अनुभव करके जगत् की स्वार्थमयी संकुचित भावना से ऊपर उठ जाए†।

यह उपनिषद् 'रामाय नमः' मन्त्र का बड़ा रहस्यात्मक और दार्शनिक अर्थ बताती है। इसके अनुसार 'नमः' जीववाचक है; क्योंकि जीव के हृदय में रहने वाली नमस्कार की भक्ति भावना इसी के भीतर है। 'राम' शब्द आत्मा का बोधक है। सर्वव्यापी आत्मा (परमात्मा) का इसी नाम से जीव ध्यान करता है। चतुर्थी की 'आय' विभक्ति को यह उपनिषद् जीव और आत्मा (परमात्मा) से एकत्व स्थापित करने वाली मानती है; क्योंकि इसी चतुर्थी विभक्ति के द्वारा जीव अपने भक्ति-प्रवण हृदय को राम के लिए समर्पित कर देता है।

यह सम्पूर्ण मन्त्र 'रामाय नमः' जीवात्मा और परमात्मा के अभेद रूप राम का बोध कराता है। इस उपनिषद् ने मन्त्र और परमात्म-सिद्धि का एक बड़ा ही

---

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड १, श्लोक ११ से १३ तक। † रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड २, श्लोक १ से ४ तक।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वाभाविक सम्बन्ध बताया है। इसके अनुसार मन्त्र के द्वारा बार-बार परमात्मा को बुलाने से भगवान् राम जीव के सम्मुख ठीक उसी प्रकार उपस्थित हो जाते हैं जिस प्रकार किसी व्यक्ति को उसके नाम के द्वारा पुकारने से वह व्यक्ति आ जाता हैं।

दशरथपुत्र राम के सगुण-निर्गुण रूप की उपासना का प्रचार यह उपनिषद् भी करती है। एक तरफ़ राम को यह दशरथपुत्र मानती है और दूसरी तरफ़ उन्हें अनंत और परम आत्मा मानती है।

इस उपनिषद् ने तान्त्रिक विचार-परम्परा और योजना का उपयोग करके बड़े तर्कपूर्ण ढंग से राम की व्यापकता सिद्ध की है। संस्कृत में 'आ' अनंतवाची शब्द है। 'र्' को तन्त्रों ने अग्नि-शक्ति का रूप माना है। यह अक्षर अग्नि-शक्ति से गर्भित अग्नि-बीज माना गया है। अतः 'र्' और 'आ' युक्त राम अनंत तेजोमय अग्नि-रूप हैं।

सीता से युक्त राम सम्पूर्ण विश्व के रूप हैं। और उनके नाम का 'म्' वर्ण सीता का ही वाचक है। तन्त्रों में 'म्' बीज सोम (चन्द्र) की शक्तियों से गर्भित माना गया है। नारी की प्रकृति शीतल मानी गयी है और पुरुष की तप्तांगार की तरह—'घृतकुंभ-समा नारी तप्तांगारसमः पुमान्'। ज्योतिष-शास्त्र भी शीतल चन्द्रमा को स्त्री ग्रह मानता है। इसीलिए यह चन्द्र बीज 'म्' सौम्यकान्ति और शीतल स्वभाव वाली सीता का बोधक है। ब्रह्म राम अपने भीतर अग्नि के अनंत तेज 'रा' और सोम की अनंत शीतलता 'म्' को धारण किये हुए जगत् के अनंत स्त्री-पुरुषों की उत्पत्ति के मूल स्रोत हैं। उनका यह अनंत अग्निषोमात्मक रूप अनंत जगत् के स्त्रीत्व और पुरुषत्व को अपने भीतर ही रखता है‡।

इस उपनिषद् के अनुसार 'सीता' राम की प्रकृति और उनकी ह्लादिनी शक्ति हैं। वे ही राम ब्रह्म की वह शक्ति हैं जिससे जगत् की सृष्टि होती है। वे मूलप्रकृति-रूपा परमेश्वरी शक्ति हैं, जिसमें सम्पूर्ण जगत् सूक्ष्म रूप से प्रलय की अवस्था में जा कर विलीन हो जाता है। वे परम चैतन्यमयी और परम आनन्दमयी हैं†।

रामपूर्वतापनीय उपनिषद् में दिये गये राम के पूजा-यन्त्र पर सम्पूर्ण विश्वशक्तियों की अभेदोपासना होती है। इस पूजा-यन्त्र पर लक्ष्मी और सीता में अभेद-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए रमाबीज 'श्रीं' स्थापित किया गया है। राम और नारायण का अभेद दिखाने के लिए 'ॐ नमो नारायणाय' तथा 'ॐ नमो वासुदेवाय' नारायण मन्त्र इस यन्त्र पर रखे गये हैं। सम्पूर्ण जीवों की इच्छाओं में प्रेरक रूप से निवास करने वाले राम की सूचना देने के लिए यन्त्र पर कामबीज (इच्छा बीज) 'क्लीं' का भी समावेश है। प्रकृति के अधीश्वर मायापति राम की ओर लक्ष्य करने के लिए यन्त्र पर मायाबीज 'ह्रीं' भी रखा गया है। राम के सात्त्विक क्रोध से पवित्र बुद्धि, लोकमंगल और आदर्शों की स्थापना होती है। इसीलिए राम की पूजा के यन्त्र पर क्रोध बीज 'हुम्' के दोनों पार्श्वों पर सरस्वती का 'ऐं' बीज

---

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड ३, श्लोक १ से ६ तक। † रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड ३, श्लोक ७ से ९ तक।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिखा जाता है। राम का सात्त्विक क्रोध अपनी दोनों भुजाओं से सरस्वती (पवित्र आदर्श और पावन बुद्धि) का प्रचार करता रहता है। इसीलिए मन्त्र पर क्रोधबीज 'हुम्' के दोनों पार्श्वों में सारस्वत बीज 'ऐं' है‡।

इस पूजा-यन्त्र पर राम की शक्तियों के रूप में हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद, जाम्बवान् तथा शत्रुघ्न सम्मिलित किये गये हैं। इनके अतिरिक्त पांचरात्र के चतुर्व्यूह† अपनी शक्तियों§ के साथ यन्त्र पर रखे गये हैं। अष्ट लोकपाल* और दस दिक्पाल§ भी इस राम यन्त्र पर पूजित होते हैं। दस दिक्पालों के आयुधों× की भी इस यन्त्र पर स्थापना और पूजा होती है। इनके अतिरिक्त वानरों तथा+ ऋषियों* की भी पूजा इस यन्त्र पर होती है¶। अष्ट वसु‡⊕ ग्यारह रुद्र‡‡ बारह सूर्य‡† और वषट्कार (ब्रह्मा) की स्थापना और पूजा भी राम यन्त्र पर होती है। इनके अतिरिक्त शेषनाग तथा आठ और नाग‡§ भी राम यन्त्र पर स्थापित और पूजित होते हैं‡*।

रामपूजायन्त्र पर नृसिंह का 'क्ष्रौं' बीज-मन्त्र तथा वराह का 'हुम्' बीज-मन्त्र भी लिखा जाता है। 'क्ष्रौं' का 'क्ष्' अमोघा शक्ति का, 'र्' क्रोधिनी शक्ति का, 'औ' अनुग्रह शक्ति का तथा अनुस्वार ब्रह्मज्ञान की ओर ले जाने वाले अनाहत नाद का प्रतिनिधि है।

इस तरह विश्व भर में व्याप्त अनंत शक्तियाँ जो विभिन्न रूपों में दिखाई देती हैं, रामपूजायन्त्र पर अभेद-सम्बन्ध से सम्बद्ध करके एक ही विराट् अनंत राम के अंग की तरह देखी गयी हैं।

राम-सम्बन्धी मालामन्त्र तथा उसके अक्षरों में गर्भित शक्तियों का विवेचन रामपूर्वतापनीय उपनिषद् में बड़े आश्चर्यमय ढंग से किया गया है। इस उपनिषद् के अनुसार रामोपासना का मालामन्त्र इस प्रकार है :—

---

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड ७, श्लोक १ से ८ तक। † वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। § शान्ति, श्री, सरस्वती तथा रति। * धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र। § इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, चन्द्रमा, ईशान, ब्रह्मा और अनंत। × वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, शूल, पद्म तथा चक्र। + नल, नील, सुषेण, मैन्द, शरभ, द्विविद, धनद, गवाक्ष, किरीट, कुण्डल, श्रीवत्स, कौस्तुभ, शंख, चक्र, गदा और पद्म इत्यादि। * वसिष्ठ, वामदेव, जाबाल, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, वाल्मीकि, नारद, सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इत्यादि। ¶ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड ६, श्लोक १२ से १६ तक। ‡⊕ ध्रुव, धर, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास। ‡‡ हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, शम्भु, वृषाकपि, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व और कपाली। ‡† धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा, तथा विष्णु। ‡§ अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म शंख और कुलिक। ‡* रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड ८, श्लोक १ से ६ तक।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनायामिततेजसे बलाय-रामाय विष्णवे नमः ॐ ‡ ।

परमात्मा की सगुण-निर्गुण उपासना के भीतर सगुण-रूप का निर्देश करने वाले मन्त्रों के अक्षरों की शक्तियों के द्वारा उपनिषदों ने तान्त्रिक पद्धति से मन्त्रों के द्वारा निर्गुण अनतशक्ति की भी सिद्धि की है। तन्त्रों ने अक्षरों की जिन मूलभूत शक्तियों का निर्धारण कर दिया है उनके आधार पर सगुण-सूचक उपासना-मन्त्र भी निर्गुण का बोध कराने लगते हैं। तन्त्रों ने वर्णमाला के सब अक्षरों की अन्तर्निहित शक्तियों के अनुभव के रहस्य का प्रतिपादन करते हुए विराट् ब्रह्म के भीतर विकसित हुए शब्दब्रह्मात्मक अक्षरों को भी ब्रह्म की विभिन्न शक्तियों से सम्पन्न माना है।

उल्लिखित मन्त्र का प्रथम अक्षर 'ॐकार' विराट् ब्रह्म का सूचक है। तान्त्रिक चिन्तन-पद्धति के आधार पर मन्त्र के 'म' अक्षर को इस उपनिषद् ने निद्रावाचक माना है, 'ग' स्मृति का केन्द्र है, 'व' भेद का स्वरूप है, 'त्' कामिका शक्ति है, 'ए' रुद्र शक्ति है, 'र्' अग्नि शक्ति है, 'घ्' मेधा शक्ति है, 'उ' अमरता है, 'न' दीर्घकला शक्ति है, 'आ' मानदा कला है, अनुस्वार (चन्द्रमा) सौम्यशक्ति है. 'द' ह्लादिनी शक्ति है, 'न्' फिर दीर्घकला शक्ति है, 'आ' मानदा शक्ति है, 'य' क्षुधा शक्ति है, 'र्' क्रोधिनी शक्ति है, 'क्ष्' अमोघा शक्ति है, 'ओ' विश्व शक्ति है, 'य्' मेधा शक्ति है, 'न्' फिर दीर्घ कला है. 'व' ज्वालिनी या वह्नि कला है, 'इ' सूक्ष्म रुद्र है, 'श्' मृत्यु प्रणव कला है, 'अ' उससे लगी हुई प्रतिष्ठा या उच्चारण की आधार-स्वरूपा शक्ति है, 'दा' फिर अनंत 'आ' से युक्त ह्लादिनी शक्ति है, 'य' त्वक् शक्ति है, 'म' विष शक्ति है, 'ध' प्रीति शक्ति है, 'उ' अमर शक्ति है, 'र' ज्योति शक्ति है, 'प्' तीक्ष्णा शक्ति 'र्' अग्नि शक्ति से युक्त है, 'स' श्वेता शक्ति अनुस्वार (चन्द्रमा) सौम्य शक्ति से युक्त है, फिर 'न' कामिका शक्ति है। इसके बाद पूर्व सूचित 'व', 'द' और 'न' हैं, जिनके अन्त में अनन्त वाची 'आ' है। इसके बाद 'आ' से युक्त 'या' अनन्त वायु शक्ति है, इसके बाद ह्रस्व 'इ' रुद्र शक्ति से युक्त 'म्' विष शक्ति है। 'ते' में कामिका 'त्' तथा रुद्र 'ए' शक्तियाँ हैं, 'से' में 'स्' श्वेता तथा 'ए' रुद्र शक्तियाँ हैं, 'व' में तापिनी तथा 'ला' के 'ल्' में भू, और 'आ' में अनंत शक्तियाँ है, 'रा' के 'र्' में अग्नि तथा 'आ' में अनंत शक्तियाँ हैं, 'मा' के 'म्' में विष (काल) तथा 'आ' में नारायण (अनंत) शक्तियाँ हैं, 'य' वायु (प्राण) शक्ति है, 'वि' में 'व्' जल शक्ति तथा 'इ' विद्या शक्ति है, 'ष्ण' में 'ष्' पीला शक्ति तथा 'ण' रति या प्रेम शक्ति है, 'वे' में 'व्' जल शक्ति तथा 'ए' विश्व की सृष्टि करने वाली शक्ति है, 'नमः' के 'न' में दीर्घकला शक्ति और 'म' में काल शक्ति है तथा ॐकार अन्त में पुनः विराट् ब्रह्म का सूचक है।

इस तान्त्रिक पद्धति से मन्त्र के आदि और अंत में ॐकार की ध्वनि, आदि और अंत में, सृष्टि के पूर्व तथा अन्त में विराट् ब्रह्म की स्थिति की सूचना देती है तथा बीच के शक्ति-गर्भित सब अक्षर व्यक्त जगत् की विभिन्न स्थितियों में दिखाई पड़ने वाले

---

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड ९, श्लोक ४ से १० तक।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा अनुभूत होने वाले शक्तिपुंजों की सूचना देते हैं। भगवान् राम की सगुण उपासना का यह मन्त्र उपनिषद् के तान्त्रिक दृष्टिकोण से निर्गुण की अनंत व्यापकता के भीतर शाश्वत जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय की सूचना देते हुए यह स्पष्टतः घोषित करता है कि अनंत शक्तियाँ विराट् से ही उत्पन्न होती हैं, विराट् में ही स्थित रहती हैं और विराट् में ही प्रलय की दशा में लीन हो जाती हैं। इस तरह रामपूर्वतापनीय उपनिषद् का यह मन्त्र-रहस्य, राम की सगुण-निर्गुण उपासना का बड़ा स्पष्ट संकेत देता है तथा नवम खंड के अंत में यह सूचना भी देता है कि मन्त्र के भीतर निहित शक्तियाँ धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्यमय सम्पूर्ण जगत् से सम्बन्ध रखती हैं और इनसे युक्त अनंत सत् (अस्तित्व) अनंत चित् (चेतना) और अनंत आनन्दमय इस मन्त्र के सतत ध्यान से धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य की सिद्धि होती है‡।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् के अनुसार—(१) रां रामाय नमः, (२) रामचन्द्रायनमः और (३) रामभद्राय नमः—तारक मन्त्र के तीन स्वरूप हैं। ये ही क्रम से ॐकारस्वरूप, तत्स्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं। ये ही 'सत्' स्वरूप, 'चित्' स्वरूप तथा 'आनन्द' स्वरूप हैं। 'रा' और 'ॐ' में कोई अन्तर नहीं है। दोनों तारक ब्रह्म हैं। 'रा' में 'र्' अग्नि तत्त्व, 'आ' अनंत तत्त्व और 'म्' काल तत्त्व है। अनंत काल और अनंत देश में व्याप्त निर्गुण ज्योति-तत्त्व (ज्ञान) ही ॐकार स्वरूप ब्रह्म है। इसीलिए 'रां रामाय नमः' ॐकार स्वरूप है। 'रामचन्द्राय नमः' में 'चन्द्र' मनवाचक तथा अनंत ज्योति का ही एक स्थूल तथा मन के लिए गम्य वस्तु-पिंड है। अनंत को तत् (वह) शब्द से निर्देश नहीं कर सकते; क्योंकि वह बोध का विषय नहीं बन सकता। निश्चयात्मिका बुद्धि उसे निश्चय के भीतर ला कर बाँध नहीं सकती। 'यो बुद्धेः परतस्तु सः'† । इसीलिए अनंत ॐकार को निश्चय के भीतर नहीं बाँध सकते। उसका सगुण स्थूल रूप 'चन्द्र' मन और बुद्धि के लिए गम्य हो जाता है। उसके लिए निश्चयवाचक सर्वनाम तत् (वह) का प्रयोग किया जा सकता है। 'रामचन्द्राय नमः' इसीलिए तत्स्वरूप है। 'रामभद्राय नमः' में भद्र (मंगल) की स्थिति लोकमंगल विधान की सूचना देती है। स्वार्थ से ऊपर उठ कर अभेदानुभूति की ब्राह्मी स्थिति पर पहुँचा हुआ शीलविकास ही लोकमंगल विधान कर सकता है। यही ब्राह्मी स्थिति परम मंगला भद्रा स्थिति है। इसीलिए 'भद्र' युक्त 'रामभद्राय नमः' मन्त्र ब्रह्मस्वरूप है। पूर्वकथित 'रां रामाय नमः' अनंतव्यापी ॐकार-स्वरूप अस्तित्व होने के कारण ब्रह्म का सत्स्वरूप है; 'रामचन्द्राय नमः' चेतन बोध के भीतर आने वाले 'चन्द्र' से युक्त होने के कारण ब्रह्म का चित्स्वरूप है; क्योंकि 'चन्द्रमा मनसो जातः' के अनुसार भी ब्रह्म के चित्स्वरूप से उसका सम्बन्ध है और मन, प्रकाश युक्त सूक्ष्मेन्द्रिय भी माना जाता है। चन्द्र ब्रह्म की चित् शक्ति (मन) से सम्बन्ध रखता है इसीलिए 'रामचन्द्राय नमः' ब्रह्म का चित्स्वरूप है। भद्र और मंगल का सम्बन्ध आनन्द से है। इसीलिए 'रामभद्राय नमः' मन्त्र को यह उपनिषद्, ब्रह्म का आनन्द स्वरूप मानती है§।

---

‡ रामपूर्वतापनीय उपनिषद्, खंड ९, श्लोक ११ से १२ तक। † गीता, अध्याय ३, श्लोक ४२। § रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कंडिका २।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह उपनिषद् इस स्वाभाविक सत्य को स्वीकार करती है कि निरन्तर उपासना और पवित्र चिन्तन के कारण व्यक्ति स्वयं ही पवित्र नहीं होता अपितु वह अपनी पवित्रता को प्रसारित भी करता रहता है । अपनी अधिकता के कारण वह पवित्रता उसके शरीर के बाहर जा कर उस स्थान को बहुत दूर तक पवित्र कर देती है, जहाँ कोई पवित्रात्मा रहती है । यह उपनिषद्, शिव को राम का अनंत उपासक मानती है और शंकर की यह उपासना काशी की भूमि पर होती रहती है । इसी उपासना की शिवगत पवित्रता के कारण काशी के भीतर भी शाश्वत पवित्रता उत्पन्न हो गयी है । राम के तारक मंत्र के साथ वह भी जगत्तारणी हो गयी है‡ । इसी सत्य के आधार पर परम रामभक्त शिव और उनकी पुरी काशी का साथ गोस्वामी जी ने अपने जीवन के अंत तक नहीं छोड़ा । इन्हीं स्रोतों से गोस्वामी जी के शिव की रामभक्ति भी परिवर्धित हुई होगी ।

पांचरात्र के संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और वासुदेव के सिद्धान्त को माण्डूक्योपनिषद् के चतुष्पाद् ब्रह्म से सम्बद्ध करके इस उपनिषद् ने राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को भी चतुष्पाद् ब्रह्म के वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न रूपों से सम्बद्ध कर दिया है । भारतीय धर्मसाधना की इस परम्परा में कृष्णोपासना से सम्बद्ध ये चतुर्व्यूह के नाम रामोपासना से सम्बद्ध कर दिये गये । इस तरह राम और कृष्ण में, अभेदोपासना के दृष्टिकोण से भारतीय भक्तों ने साम्य स्थापित कर अभेदानुभूति की अपनी उदार साधना का परिचय दिया । इन दो उपासनाओं को एक केन्द्रीय सूत्र से सम्बद्ध करने के लिए रामोत्तरतापनीय उपनिषद् ने माण्डूक्य उपनिषद् का पूरा उपयोग किया है । इस तरह के उपयोग का इस उपनिषद् को अधिकार भी स्वभावतः प्राप्त था; क्योंकि ये दोनों उपनिषद् अथर्ववेद के ही हैं । अतः अथर्ववेद का साहित्य भारतीय धर्मसाधना के भीतर समन्वय साहित्य की एक कड़ी है । माण्डूक्य उपनिषद् का सम्पूर्ण शरीर केवल बारह गद्यवाक्यों से बना हुआ है । रामोत्तरतापनीय उपनिषद् में इन बारहों वाक्यों की विचार-परंपरा का उपयोग करके चतुर्व्यूह का सिद्धान्त चतुष्पाद् ब्रह्म के सिद्धान्त से सम्बद्ध किया गया है, और उसके साथ ही साथ राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के अवतारों को भी चतुर्व्यूह का रूप सिद्ध किया गया है ।

रामोत्तरतापनीय के अनुसार लक्ष्मण ॐकार के 'अ' अक्षर से उत्पन्न हुए हैं । ये जाग्रत अवस्था के स्वरूप हैं तथा विश्व के रूप में इनका ध्यान किया जा सकता है। चतुर्व्यूहों के संकर्षण ये ही हैं—'अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः'† ।

इस उपनिषद् के अनुसार लक्ष्मण, रामब्रह्म के प्रथम पाद हैं । ब्रह्म के प्रथम पाद का लक्षण, माण्डूक्य उपनिषद् के अनुसार निम्नांकित है—

"जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञःसप्तांग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः"$ ।

---

‡ रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कंडिका ४ । † रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कंडिका ३ ।
$ माण्डूक्य उपनिषद्, वाक्य ३ ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस लक्षण में ब्रह्म के इस चरण को वैश्वानर ब्रह्म कहा गया है। वैश्वानर ब्रह्म जागरित स्थान, बहिष्प्रज्ञ, सप्तांग, उन्नीस मुख वाला तथा स्थूलभुक् होता है। जिस तरह जागता हुआ जीव अपने चारों तरफ़ के संसार को देखता रहता है, उसका ज्ञान बाह्य जगत् से सम्बद्ध होता रहता है, सिर से पैर तक के अपने सातों अंगों का तथा अपनी पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच प्राणों और मन, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त इन चार प्रकार के अन्तःकरणों का, उन्नीस मुखों की तरह, स्थूल जगत् का उपभोग करने में उपयोग करता रहता है, उसी तरह वैश्वानर ब्रह्म जाग्रत अवस्था (अपनी चित् शक्ति) से सम्पूर्ण जगत् को देखता है। अनंत ज्ञान और अनंत चैतन्य रूप से वह सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त रहता है। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्य लोकों के सात स्तरों को व्याप्त करके, वह पाताल के सात लोकों में फैला हुआ रहता है। तथा उन्नीस इन्द्रियों की विश्व समष्टि में व्याप्त हो कर इस सम्पूर्ण स्थूल जगत् का स्वयं उपभोग करता रहता है। विश्व को धारण करने वाला विश्वरूप ब्रह्म ही ब्रह्म का प्रथम चरण, वैश्वानर ब्रह्म है।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् लक्ष्मण को इसी सर्वव्यापी, अनंत तथा निर्गुण वैश्वानर का सगुण रूप मानती है और यह बताती है कि अनंत ब्रह्म राम के लीलापुरुषोत्तम रूप के प्रथम पाद यही हैं। इनमें वैश्वानर ब्रह्म के सब लक्षण मिलते हैं। श्रीराम की प्राप्ति के लिए प्रथम साधन इन्हीं की उपासना है। ये अनंत शेष के रूप में जगत् को धारण करते हैं, इसलिए भी ये विश्वधारक या वैश्वानर कहलाते हैं। वैश्वानर ब्रह्म ज्ञान-स्वरूप, परम चेतन और जागरित स्थान है। लक्ष्मण भी परम ज्ञानी, सचेत और जागृत रहते हैं। अपने इन्हीं तीन गुणों की सम्पत्ति की सहायता से इन्होंने भगवान् राम की सेवा की। अपने चारों तरफ़ के बाह्य जगत् की अवस्थाओं को ये बड़ी सतर्कता से ध्यान में रखते थे। इसीलिए वैश्वानर ब्रह्म की बहिःप्रज्ञता का लक्षण इनमें माना गया है। सात ऊपर के तथा सात नीचे के लोकों को धारण करने के कारण ये शेषनाग के रूप में सप्तांग हैं। वैश्वानर ब्रह्म भी सप्तांग होता है। पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, कल्प, शिक्षा, निरुक्त, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, अर्थशास्त्र और दर्शन की समष्टि के रूप में उन्नीस विद्याओं के पारंगत लक्ष्मण, वैश्वानर ब्रह्म की तरह उन्नीस मुख वाले कहे जाते हैं। प्रलयकाल में शेष रूप से अपने मुख की आग से ये समस्त स्थूल जगत् को अपने भीतर खींच लेते हैं, इसीलिए ये पांचरात्र के संकर्षण और स्थूलभुक् हैं।

इसी विश्वरूप वैश्वानर ब्रह्म को लक्षित करते हुए गोस्वामी जी के वसिष्ठ ने नामकरण के प्रकरण में संक्षेप में कहा है—"लच्छन धाम रामप्रिय सकल-जगत-आधार, गुरु वसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार‡।" गोस्वामी जी के 'सकल-जगत-आधार' में लक्ष्मण के शेषावतार और विश्वरूप वैश्वानर ब्रह्म दोनों का बड़ी सुन्दरता से समन्वय हो गया है।

---

‡ रामचरित मानस, बालकांड, दोहा १९७।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् ने इनको ॐकार के 'अ' अक्षर से पैदा हुआ माना है। माण्डूक्य उपनिषद् भी सम्पूर्ण विश्व को ॐकार से उत्पन्न तथा ॐकार-स्वरूप मानती है—"ओमित्येतदक्षरमिदम् सर्वंतस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भूविष्यदिति सर्वमोंकार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव" ‡ ।

ॐ ही अविनाशी ब्रह्म है। यह सम्पूर्ण जगत् उसी का परिचायक है। अतीत, वर्तमान और भविष्य जगत् सब ॐकार के भीतर ही रहता है। त्रिकालातीत ब्रह्म भी ॐकार ही है।

इसी ॐकार स्वरूप अनंत ब्रह्म के 'अ' अक्षर से लक्ष्मण की उत्पत्ति रामोत्तर-तापनीय उपनिषद् ने मानी है† ।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् शत्रुघ्न को ॐकार के 'उ' अक्षर से उत्पन्न हुआ मानती है। "उकाराक्षर सम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः" § । 'उ' अक्षर से उत्पन्न शत्रुघ्न तैजस स्वभाव के हैं। ये रामब्रह्म के द्वितीय पाद हैं। ब्रह्म के द्वितीय पाद का लक्षण बताते हुए माण्डूक्य उपनिषद् कहती है—"स्वप्नस्थानः अन्तः प्रज्ञः सप्तांगः एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः" *—स्वप्न के स्वभाव वाले सूक्ष्म जगत् को व्याप्त करने वाला, सात अंगों और उन्नीस मुखों से सूक्ष्म जगत् का अनुभव करने वाला तैजस ब्रह्म (ज्ञानमय प्रकाश का स्वामी) ब्रह्म का द्वितीय पाद है। जिस तरह सम्पूर्ण स्थूल जगत् में वैश्वानर ब्रह्म व्याप्त रहता है वैसे ही समस्त सूक्ष्म (मनोमय) जगत् में तैजस ब्रह्म व्याप्त रहता है।

तैजस ब्रह्म के इन्हीं लक्षणों को ले कर रामोत्तरतापनीय उपनिषद् ने शत्रुघ्न के लक्षणों की परीक्षा की है। चतुर्व्यूह के संकर्षण के बाद प्रद्युम्न ये ही हैं। प्रद्युम्न (काम या मनोमय जगत्) का अंश होने के कारण ये विश्व भर के मन में स्थित रहते हैं। मनोमय सूक्ष्म जगत् में अन्तर्व्यापी ब्रह्म के ये सगुण रूप हैं। मनोमय जगत् के अधिष्ठाता होने के कारण वे अन्तःप्रज्ञ हैं, सबके मन की बात जानते हैं। सूक्ष्म मनोमय जगत् का सम्पूर्ण तंत्र शत्रुघ्न की शक्ति से चलता है। विश्वसमष्टि मन इन्हीं की शक्ति पर आधारित है। लक्ष्मण के सगुण विशेषणों की तरह ये भी सप्तांग और उन्नीस मुख वाले हैं। काम-शक्ति का मूल स्रोत होने के कारण ये परम सुन्दर हैं। अतः उपनिषदों के तैजस तथा पांचरात्र के प्रद्युम्न ब्रह्म शत्रुघ्न ही हैं।

सम्पूर्ण जगत् के मनोमय कोष में व्याप्त इसी तैजस ब्रह्म का लक्षण शत्रुघ्न में बताने के लिए गोस्वामी जी ने नामकरण के समय वसिष्ठ से कहवाया है—"जाके सुमरिन तें रिपु नासा, नाम शत्रुहन वेद प्रकासा §" । यहाँ सुमिरन शब्द मनोमय अनंत कोष

---

‡ माण्डूक्य उपनिषद्, वाक्य १। † रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कंडिका ३। § रामोत्तर-तापनीय उपनिषद्, कंडिका ३। * माण्डूक्य उपनिषद्, वाक्य ४। § रामचरित मानस, बालकांड, दोहा १९७ के पहले।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की ओर संकेत कर रहा है तथा तैजस ब्रह्म का अंश अग्निदाहक होने के कारण अपने तेज के सामने शत्रुओं को नष्ट कर देता है। अनंत मनोमय कोष में व्याप्त इस ब्रह्म का ध्यान करने से मन पवित्र हो जाता है। उसके भीतर रहने वाले शत्रु, मनुष्य के काम इत्यादि पवित्र हो जाते हैं। इस तैजस ब्रह्म का सगुण अवतार, शत्रुघ्न इतना प्रतापी है कि उसके सामने वाहरी शत्रु भी नहीं टिक सकता। इसीलिए उसका नाम शत्रुघ्न रखा गया।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् के अनुसार भरत ॐ के 'म्' अक्षर से उत्पन्न हुए हैं। "प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः" ‡ प्रज्ञास्वरूप भरत 'म्' अक्षर से उत्पन्न हुए हैं। रामब्रह्म के ये तृतीय पाद हैं। ब्रह्म के इस तृतीय पाद का लक्षण वतलाते हुए माण्डूक्य उपनिषद् ने कहा है—"यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानंदमयो ह्यानंदभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः" †। सुषुप्ति की अवस्था में सोया हुआ मनुष्य चेतना की लहरों से प्रभावित नहीं रहता। उसके भीतर चेतना की लहरें नहीं उठतीं। न तो वह किसी स्थूल भोग की कामना करता है और न मन की सूक्ष्मावस्था में उत्पन्न होने वाला कोई स्वप्न ही देखता है। इस अवस्था में मन भी शान्त हो जाता है। जीव की इस सुषुप्ति अवस्था के समान ही प्राज्ञब्रह्म का लक्षण होता है। जिस तरह जीव सुषुप्ति की अवस्था में मन और इंद्रियों के ऊपर उठ जाता है, न तो इंद्रियों के स्थूलभोग ही उसके साथ रहते हैं और न सूक्ष्म मन के स्वप्न ही, उसी तरह प्राज्ञ ब्रह्म मन और इंद्रियों के धर्मों के ऊपर रहता है। वह प्रकृष्ट ज्ञान के प्रकाश से भरा हुआ, आनंद में निवास करने वाला, आनंद ही का अनुभव करने वाला तथा एकमात्र चैतन्यस्वरूप और चैतन्य रहता है। उपर्युक्त दो प्रकार के स्वभावों के समान उन्नीस मुख वाला वह नहीं होता; क्योंकि ये मुख मन और इंद्रियों के हैं। प्राज्ञब्रह्म केवल चेतोमुख होता है। इस ब्रह्म पर मन और इंद्रियों का निरोध नहीं रहता। इसीलिए पांचरात्र आगम इसे अनिरुद्ध कहता है। वह अनिरुद्ध ब्रह्म किसी आवरण के आधार से सम्वद्ध नहीं है, सबसे परे है।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् के अनुसार भरत ही रामब्रह्म के तृतीय पाद, माण्डूक्य उपनिषद् के प्राज्ञब्रह्म तथा पांचरात्र आगम के अनिरुद्ध ब्रह्म हैं। अनिरुद्ध ब्रह्म के ये ही सगुणरूप हैं। प्राज्ञब्रह्म के इसी प्रज्ञानघन अनिर्लिप्त स्वभाव के कारण भरत जी किसी वस्तु से लिप्त नहीं होते। मिले हुए राज्य और ऐश्वर्य को भी उन्होंने छोड़ दिया। रामब्रह्म के प्रेम में वे अपने परम ज्ञान के साथ लीन रहे। प्रेम की इसी लीनता की समाधि में वे नन्दिग्राम में रहने लगे। वे परम ज्ञानी और कुशाग्र वुद्धि के थे। प्राज्ञ ब्रह्म का यह धर्म उनमें असीम रूप से विद्यमान था। अपने विवेक के कारण वे एकमात्र चैतन्य मुख थे। चैतन्यावस्था का परम ज्ञान ही उनके हर पग का संचालन करता था। अतः प्राज्ञब्रह्म का यह सगुण रूप अपनी समग्र साधनाओं से महाप्राज्ञ था। विश्व में व्याप्त सच्चिदानन्द की इसी 'चित्' शक्ति के द्वारा विश्व का भरण-पोषण होता रहता

‡ रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कंडिका ३। † माण्डक्य, वाक्य ५।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। इस चैतन्य के न रहने पर विश्व का क्षरण और नाश होने लगता है। चैतन्य की इसी शक्ति के सगुणरूप भरत का ज्ञान कराने के लिए गोस्वामी जी के वसिष्ठ ने नामकरण संस्कार के समय कहा है—"विस्वभरन पोषन कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई" ‡। जिस शरीर को चैतन्य छोड़ देता है वह क्षरित हो कर नष्ट हो जाता है। जगत् के भीतर सब पिंडों के साथ यही नियम लागू है। गोस्वामी जी ने 'चित्' शक्ति के इसी लक्षण को चेतोमुख प्राज्ञ ब्रह्म के सगुणरूप भरत में दिखाया है।

रामोत्तरतापनीय उपनिषद् के अनुसार ॐकार के 'म्' के बाद उच्चरित होने वाली अर्धमात्रा से राम की उत्पत्ति हुई है—"अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः" †। ॐकार की अर्धमात्रा राम का ही स्वरूप है। राम केवल ब्रह्मानन्दस्वरूप हैं। सगुण स्वर और व्यंजनों के बाद की अर्धमात्रा का उच्चारण निर्गुण हो जाता है। यही निर्गुण ब्रह्म राम का द्योतक है। विराट् की इसी सर्वातीत अवस्था से राम ब्रह्म का संकेत दिया गया है। मर्यादापुरुषोत्तम इसी आनन्दमयी ब्राह्मी अवस्था के अधिदेव हैं। इसी निर्गुणावस्था के भीतर से वे सगुण हो जाते हैं। ब्रह्म की यह अवस्था ब्रह्म का चतुर्थ पाद मानी जाती है। पांचरात्र आगम का 'वासुदेव' ब्रह्म यही है।

माण्डूक्य उपनिषद् ने ब्रह्म के इस लक्षण को बतलाते हुए कहा है—"नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतम् चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मास विज्ञेयः" §।

यह ब्रह्म न अन्तःप्रज्ञ, न उभयतःप्रज्ञ, न प्रज्ञान घन, न प्रज्ञ, न अप्रज्ञ, अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अचिन्त्य, अलक्षण, अव्यपदेश्य, एकात्मप्रत्ययसार, प्रपंचोपशम, शान्त, शिव तथा अद्वैत है। चतुष्पाद् ब्रह्म का यह विज्ञान रामोत्तरतापनीय उपनिषद् में अविकल उद्धृत है *।

निर्गुण तो अचिन्त्य, अदृष्ट, अव्यवहार्य है तथा वह बुद्धि के भीतर नहीं आ सकता। शब्दों के द्वारा उसे समझाने का केवल प्रयत्न किया जाता है। वह एक ऐसी स्थिति है जो केवल अनुभवगम्य होती है। बुद्धि के भीतर आने वाला कोई ज्ञान और दृश्य उसे पूर्णतः नहीं समझा सकता।

यही असीम और अचिन्त्य निर्गुण, सगुण हो कर सीमा में भी अपने व्यक्त सम्बन्ध स्थापित करता रहता है। यही शान्त, शिव तथा अद्वैत आत्मा सगुण राम के रूप में व्यक्त होता है। यही पांचरात्र का वासुदेव ब्रह्म है। ब्रह्म की ये चारों अवस्थाएँ विराट् ॐकार ब्रह्म की ही अवस्थाएँ हैं। इनमें कोई अधिक भेद नहीं है।

इस तरह औपनिषद ब्रह्म की चार अवस्थाओं से चतुर्व्यूह के चार प्रकार के अवतारों को सम्बद्ध करके रामोत्तरतापनीय उपनिषद् ने उन सबसे राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न का समन्वय स्थापित किया है।

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १९७ के पूर्व। † रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कंडिका ३। § माण्डूक्य उपनिषद्, वाक्य ४। * रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कंडिका ३।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गोस्वामी जी ने इन चारों प्रकार के अवतारों का समन्वय बहुत थोड़े से शब्दों में, पर बड़ी स्वाभाविकता से कर दिया है।

विश्व में चार प्रकार से व्याप्त एक ही अनंत की चार विश्वव्यापिनी अवस्थाओं का वर्णन उपनिषदों ने चतुष्पाद् ब्रह्म के रूप में किया है। इस निर्गुण की सगुण उपासना के भीतर भक्तों ने यह अनुभव किया कि अपनी इन चार अवस्थाओं को चार भागों में विभक्त करके इनमें से एक-एक को प्रधान बना कर ब्रह्म चार प्रकार के रूपों में अवतीर्ण होता है। पांचरात्र आगम के अनिरुद्ध, संकर्षण, प्रद्युम्न, और वासुदेव इसी प्रक्रिया में आने वाले, अनंत ब्रह्म के चार प्रकार के सगुण अवतार हैं। बहुत प्राचीन काल से पांचरात्र आगम कृष्णोपासना से सम्बद्ध भक्ति-शास्त्र मालूम पड़ता है, क्योंकि उसने ब्रह्म के सगुण अवतारों के प्रकारों का उन्हीं नामों के द्वारा निर्देश किया है जो कृष्णावतार के समय वासुदेव (श्री कृष्ण), संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के थे। अथवा यह भी माना जा सकता है कि ये नाम कृष्णावतार के भी पहले वैष्णव साधना के भीतर सम्भवतः आ गये हों और कृष्ण-जन्म के समय गुणों के अनुसार कृष्ण इत्यादि को दे दिये गये हों। अस्तु, इन चार नामों के सगुण ब्रह्म के आधार पर रामोत्तरतापनीय उपनिषद् ने राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के अवतारों के रहस्य को समझाया तथा इसी पांचरात्र और औपनिषद परम्परा का अनुसरण करते हुए गोस्वामी जी ने भी राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को एक ही अनत के चार रूपों की तरह देखा है और उन सब को अलग-अलग भी अनंत ही माना है तथा भगवान् राम को पूर्ण ब्रह्म मानते हुए उनके भीतर चारों तरह के स्वभावों को एक ही केन्द्र में केन्द्रित भी देखा है।

बालकांड में रामजन्म के बाद ही गोस्वामी जी ने लिखा है—"जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल-लोक-विस्राम"‡ और इसके बाद ही 'भये प्रगट कृपाला' स्तुति में गोस्वामी जी ने राम के लिए 'अनंत', 'सोभासिन्धु', 'माया-गुन-ज्ञानातीत', 'अमान', 'सब-गुन-आगर', 'रोम रोम प्रति मायानिर्मित ब्रह्माण्ड निकाया' और 'माया-गुन-गोपार' तथा 'सुजाना' इत्यादि शब्दों का उपयोग किया है। इनमें से 'जगनिवास', 'सब-गुन-आगर' 'रोम रोम प्रति मायानिर्मित ब्रह्माण्ड निकाया' विशेषण विश्वरूप वैश्वानर ब्रह्म के हैं; 'अखिल लोक विस्राम', 'माया-गुन-ज्ञानातीत' तथा 'मायागुन-गोपार' विशेषण वासुदेव ब्रह्म के हैं, जिसका वर्णन माण्डूक्य उपनिषद् ने प्रपंचोपशमं, शान्तं, शिवं, अग्राह्यं अलक्षणं, अचिन्त्यं, अव्यपदेश्यं इत्यादि विशेषणों के द्वारा किया है; 'सोभासिन्धु' विशेषण तेजोमय प्रद्युम्न ब्रह्म का है; 'सुजाना' और दूसरे स्थानों में 'मोहपर' इत्यादि विशेषण प्राज्ञ (अनिरुद्ध) ब्रह्म के हैं तथा 'अनंत' और 'अमान' विशेषण ब्रह्म की चारों अवस्थाओं के हैं। इस तरह गोस्वामी जी ने राम के भीतर ब्रह्म की सब अवस्थाओं का अन्तर्भाव करके एकत्व का सिद्धान्त स्थापित किया है और बाद में चारों अवस्थाओं के सगुण अवतारों को अलग-अलग स्वीकार करते हुए, उन सब को फिर एकत्व की दृष्टि से अपना ईश ही माना है—

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १९१।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"सकल तनय चिर जीवहु तुलसिदास के ईश ।" दशरथ के चारों पुत्रों को अपना ईश मान कर उन सबको गोस्वामी जी ने अनंत ब्रह्म के चार प्रकार के अवतार मान लिया है। नामकरण के समय भी गोस्वामी जी के वसिष्ठ ने कहा है—"इन्हके नाम अनेक अनूपा, मैं नृप कहव स्वमति अनुरूपा" †। चारों के नाम की अनेकता और अनुपमता की चर्चा करके गोस्वामी जी ने चारों की अनंतता ही व्यक्त की है। ब्रह्म के इन चार प्रकार के अवतारों के जन्म के समय सम्पूर्ण वातावरण ब्रह्मानन्द से आप्लावित था। गोस्वामी जी जगत् में उत्पन्न हुए इस परिवर्तन के प्रति जागरूक हैं। उन्होंने लिखा है—"सुमन वृष्टि अकास तें होई, ब्रह्मानन्द मगन सब कोई §।" उनके शिव और कागभुशुंडि भी ब्रह्मानन्द से पूर्ण वायुमंडल में परामनन्द में मग्न हो कर और राम के प्रेमसुख में फूल कर अयोध्या की वीथियों में घूम रहे थे। उन्हें अपने अस्तित्व तक का ज्ञान न था। उनके शिव कहते हैं–"काकभुशुंडि संग हम दोऊ, मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ। परमान्द प्रेम-सुख-फूले, वीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले *।"

एक ही अनंत, अयोध्या में चार रूपों में अवतीर्ण हुआ है। इसीलिए उन चारों का वर्णन करते हुए भी उनमें से उस एक के प्रति उनका ध्यान विशेष केन्द्रित है और उसी एक पुरुषोत्तम के विकास का चित्रण करने में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण कलात्मक और भावात्मक योग्यता को केन्द्रित कर दिया है। बालकों के सौन्दर्य-वर्णन के समय ही अपने इस एक-केन्द्र-केन्द्रित ध्यान की सूचना गोस्वामी जी ने दे दी है—"स्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी, निरखहिं छवि जननी तृन तोरी। चारिउ सील-रूप-गुन-धामा, तदपि अधिक सुखसागर रामा §।" राम के एक केन्द्र में केन्द्रित अपने इस ध्यान के भीतर गोस्वामी जी उनके अनंत शील, शक्ति और सौन्दर्य का दर्शन कर लिया है।

इस उपनिषद् ने भगवान् श्री रामचन्द्र को पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश के सम्पूर्ण विस्तार में व्याप्त अद्वैतपरमानन्दात्मा, अखंडैकरसात्मा, ब्रह्मानन्दामृत, तारक ब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्वरूप, सब वेद, वेदांग, वेदशाखा और पुराणस्वरूप, जीवात्मास्वरूप, सर्वभूतान्तरात्मा, देव, असुर तथा मनुष्य इत्यादि के रूप में व्याप्त, मत्स्य कूर्मादि अवतारों में व्यक्त होने वाला, पंचप्राणस्वरूप, चार प्रकार के अन्तःकरणों में व्याप्त रहने वाला, यम, अंतक, मृत्यु तथा अमृतस्वरूप पंचमहाभूत तथा समस्त स्थावर-जंगम की आत्मा, पंचाग्नि तथा सप्तमहाव्याहृतियों में व्याप्त रहने वाला, विद्या, सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी तथा जानकी के रूप में व्यक्त होने वाला, त्रैलोक्य रूप, सूर्य, सोम, नक्षत्र, ग्रह, आठ लोकपाल, आठ वसु, ग्यारह रुद्र तथा बारह आदित्यों में व्याप्त रहने वाला, अतीत, वर्तमान और भविष्य के विस्तार में विस्तृत, ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर विराट् रूप में स्थित रहने वाला अनुभव किया है। जो हिरण्यगर्भ सृष्टि का आदि कारण, विराट्, स्वर्णिम अंडाकार

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १९६। † रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १९६ के बाद। § रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १९३ के बाद। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १९५ के बाद। § रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १९८ के पहले।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभिव्यक्ति है उसके स्वरूप में उसने राम को ओत-प्रोत देखा है। प्रकृतिस्वरूप, ॐकार-स्वरूप राम का उसने साक्षात्कार किया है। चार अर्धमात्राओं के भीतर निवास करने वाले राम का उसे ज्ञान है। परमपुरुषस्वरूप, महेश्वर तथा महादेव के रूप में रहने वाले रांम को वह जानती है। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मंत्र तथा महाविष्णु में शक्तिरूप से वर्तमान रहने वाले, परमात्मा, विज्ञानात्मा तथा सच्चिदानन्देकरसात्मा राम की उपलब्धि उसने की है‡।

इसी विराट् राम की सगुण-निर्गुण भक्ति की सिद्धि में यह उपनिषद् चतुर्वर्ग की सिद्धि का मूल बीज देखती है।

इस उपनिषद् के अनुसार सीता जगदानन्ददायिनी, सब शरीरों की उत्पत्ति स्थिति और संहारकारिणी मूल प्रकृति है—"श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी उत्पत्तिस्थिति संहारकारिणी सर्वदेहिनाम्। सा सीता भवति ज्ञेयामूलप्रकृतिसंज्ञिका। प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः"†।

जिस तरह सांख्यदर्शन के अनुसार प्रकृति पुरुष के सम्बन्ध से ही अपना कार्य कर सकती है उसी प्रकार सीता भी परमपुरुष राम की ही शक्ति है और उनसे अभिन्न है, विराट् ॐकार स्वरूप ब्रह्म का वह अंग ही है और उससे अभिन्न है। प्रकृति और पुरुष की अभिन्नता, माया और ब्रह्म की अभिन्नता का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत के मायाविशिष्ट ब्रह्म के सिद्धान्त के समान ही है। इस सिद्धान्त में माया और ब्रह्म दोनों एक तत्त्व और सत्य हैं। ये दोनों ऐसे ही अभिन्न हैं जैसे शरीर और शरीरी। राम और सीता दोनों एक ही तत्त्व हैं और दोनों विराट् ॐकार के ही स्वरूप हैं।

गोस्वामी जी ने भी सीता को नमस्कार करते हुए राम के साथ उनका इसी तरह का सम्बन्ध स्थापित किया है—"उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीं। सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोहं रामवल्लभाम्§।"

सीता और राम को एक साथ नमस्कार करते हुए उन्होंने यही अभेद-सम्बन्ध उनमें देखा है—"गिरा अरथ, जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न, बन्दउँ सीता रामपद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न"*।

सीता और राम का सम्बन्ध गोस्वामी जी ने वाणी और अर्थ के सम्बन्ध तथा जल और लहर के अभेद-सम्बन्ध के समान ही माना है।

अथर्ववेद के सीतोपनिषद् में सीता के स्वरूप का ही मुख्यतः विवेचन किया गया है; इसलिए इसमें विस्तार से सीता शक्ति का रहस्य समझाया गया है। इस उपनिषद् के अनुसार भी सीता ॐकार से उत्पन्न हुई, ब्रह्म की शक्ति और प्रकृति स्वरूप हैं। व्यक्त प्रकृति को रूप देने वाली मूलप्रकृति शक्ति सीता ही हैं।

---

‡ रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कंडिका ५ † रामोत्तरतापनीय उपनिषद्, कंडिका ३। §रामचरितमानस, बालकांड, मंगलाचरण, श्लोक ५। * रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १८।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस उपनिषद् ने 'सीता' शब्द के तीन खंड किये हैं—स्, ई और ता। 'स्' सत्य तथा अमृत शब्द का सूचक है। अष्टसिद्धियों में प्राप्ति-सिद्धि का भी यही सूचक है। 'प्राप्ति'-सिद्धि से साधक कहीं भी पहुँच सकता है। यही ध्वनि चन्द्र शक्ति से भी गर्भित मानी जाती है। चन्द्र शक्ति अनंत मनोमय कोष (जगत् भर का मन) पर नियन्त्रण रख कर उसका स्वभाव बनती है। इतनी सब शक्तियाँ सीता के एक अंश केवल 'स्' में निहित हैं। 'प्राप्ति' से उनकी सर्वव्यापी शक्ति का संकेत मिलता है। उनके लिए यह सम्भव है कि सगुण रूप में भी जहाँ चाहें वहाँ किसी भी समय पहुँच और रह सकती हैं। इस पद्धति से सीता के नाम के ही आधार पर सीतोपनिषद् ने उनकी शक्तियों का विवेचन किया है।

सीता के नाम का ईकार सम्पूर्ण जगत् के प्रपंच के बीज-स्वरूप भगवान् विष्णु की योगमाया या अव्यक्तरूपा महामाया है। यही योगमाया 'स्' (चन्द्र) के समान अपने धवल अंगों और उज्ज्वल आभूषणों के साथ व्यक्त रूप की सगुणता में सीता के रूप में आती है।

दीर्घ 'आ' की मात्रा के साथ रहने वाला 'त्' अक्षर महालक्ष्मी का स्वरूप है। वह प्रकाशमय तथा 'आ' (विस्तार) को सम्भव बनाने वाले, सृष्टि का विस्तार करने वाले शक्तिपुंज से ओत-प्रोत है।

सीतोपनिषद् सीता के तीन स्वरूप मानती है। उनका प्रथम स्वरूप शब्द ब्रह्म है। वे बुद्धि-स्वरूपा हैं। अध्ययन-काल में विद्यार्थियों पर प्रसन्न हो कर उन्हें बोध प्रदान करती हैं। उनका दूसरा स्वरूप सगुण है। इस स्वरूप में राजा सीरध्वज की कन्या के रूप में उनका आविर्भाव होता है। उनका तीसरा रूप 'ईकार'-रूपिणी अव्यक्त सत्ता महामाया योगमाया का है। इस रूप से वे जगत् के विस्तार को सम्भव बनाती रहती हैं।

सीतोपनिषद् ने शौनकीय तन्त्र के आधार पर सीता को सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सबकी आधारभूता, कार्य और कारण के स्वभावों में व्याप्त रहने वाली, चेतन और जड दोनों में निवास करने वाली, देवता, ऋषि, मनुष्य और गन्धर्वों में व्याप्त रहने वाली, असुर, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच इत्यादि प्राणियों में अव्यक्त रूप से निवास करने वाली पंचमहाभूतों, दस इन्द्रियों, मन और प्राण की शक्तियों में व्याप्त रह कर विश्वरूपा महालक्ष्मी माना है। उन्हें देवाधिदेव भगवान् से भिन्न और अभिन्न दोनों माना है।

ऐसे ही आधारों पर सीताराम के सम्बन्ध का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने भेदाभेद सिद्धान्त के अनुसार 'कहियत भिन्न न भिन्न'‡ कहा है।

शौनकीय तन्त्र शक्तिरूप में भी सीता के तीन स्वरूप मानता है—इच्छाशक्ति रूप, क्रियाशक्ति रूप तथा साक्षात्शक्ति रूप। इन तीन शक्ति-रूपों में सीताशक्ति विकसित होती रहती है।

---

‡ रामचरितमानस, बालकांड, दोहा १८।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सीता का इच्छाशक्ति रूप भी तीन तरह से विकसित होता है—श्रीदेवी के रूप में, भूदेवी के रूप में तथा नीलादेवी के रूप में। इच्छाशक्ति कल्याणरूपिणी, प्रभाव-रूपिणी तथा सूर्य, चन्द्र और अग्निरूपिणी हो कर प्रकट होती है। सीता की चन्द्रशक्ति से औषधियाँ पुष्ट होती रहती हैं। चन्द्रशक्ति ही अमृत की मूलभूता शक्ति है। इसी से अमृत उत्पन्न हो कर देवताओं को पोषित करता रहता है। अन्न और तृण के द्वारा सीताशक्ति ही अपनी चन्द्रशक्ति से सब जीवों का पालन करती रहती है।

ब्रह्म की यही सीताशक्ति सूर्यादि समस्त ज्योतिष्पिंडों को प्रकाशित करती है। काल की समस्त प्रकार की कल्पनाओं में काल बन कर सीताशक्ति का ही अनंत विस्तार विस्तृत रहता है। अतः सीता प्रकाशरूपा और कालरूपा भी हैं। उनका अग्निरूप, विभिन्न तापमानों में जगत् की विभिन्न वस्तुओं के भीतर-बाहर स्थित रह कर उनका पोषण और संहार दोनों करता रहता है। समस्त जीवों में भूख और प्यास बन कर वही व्यक्त होता रहता है। हवि ले जाने के लिए वही देवताओं का मुख बनता है। नित्य व्यापक अग्नि-तत्त्व उन्हीं की शक्ति है तथा सीमित काल में जलने वाली आग में उन्हीं का निवास है।

सम्भवतः इसी आधार पर गोस्वामी जी के राम ने पंचवटी में सीताहरण के पहले असली सीता को अग्नि में निवास करने के लिए भेज दिया और माया सीता के साथ रहने लगे, जो रावण की लंका में गयी और रावण-वध के बाद जो अग्नि में जल गयी तथा मूलभूता सीताशक्ति उसी आग में से पुनः आविर्भूत हो गयी।

इस प्रकार भगवान् के संकल्प का संकेत पा कर सीतादेवी, लक्ष्मी, भू और नीलादेवी के रूप में रूपान्तरित हो जाती हैं। लक्ष्मी के रूप में वह अनंत जगत् का पालन करती हैं, भूदेवी के रूप में चौदह भुवनों के और सप्तद्वीपों तथा सप्तसमुद्रों के रूप में प्रणवस्वरूपा यही सीता व्यक्त हो जाती हैं तथा विद्युत्माला के रूप में समस्त प्राणियों के अस्तित्व को सम्भव बनाती हैं। ससस्त भुवनों के आधार के लिए जलाकार और मण्डूकमय रूप में यही शक्ति परिवर्तित हो जाती है।

सीतोपनिषद् द्वारा उद्धृत शौनकीय तन्त्र के अनुसार श्रीहरि के मुख से व्यक्त हुए 'नाद' के रूप में सीता का क्रियाशक्ति रूप व्यक्त हुआ। उस नाद से विन्दु प्रकट हुआ।

नाद और विन्दु के रहस्य को समझने के लिए श्रीमधुसूदन सरस्वती का 'प्रस्थानत्रय' ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है। इस ग्रन्थ ने सृष्टि के रहस्य को समझाने के लिए उपनिषदों और तन्त्र-ग्रन्थों के आधार पर नाद और विन्दु का बड़ा स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ के अनुसार प्रलयावस्था में स्वयं प्रकाश, अखंड, एकरस अद्वैत ब्रह्म ही रहता है। 'स्पन्दन' और 'अस्पन्दन' नामक दो शक्तियाँ इस ब्रह्म में अव्यक्त रूप में लीन रहती हैं।

प्राणियों के कर्मों के अनुसार प्रलय के बाद पुनः सृष्टि होती है। जीवों के कर्मों के अनुसार प्रलय के विश्राम के पश्चात् उन्हें फिर से सुख-दुःख के चक्र में चलाने के लिए ब्रह्म में सृष्टि करने का संकल्प उत्पन्न होता है। संकल्प के स्फुरण से ईक्षणा शक्ति के द्वारा स्पन्दन और अस्पन्दन शक्तियों का संयोग (सम्मिलन) होने लगता है। इस सम्मिलन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से गुणत्रय की साम्यावस्था वाली, जड-चेतन विभाग के साथ महाशक्ति (प्रकृति) उत्पन्न होती है। ब्रह्म का शुद्ध चेतनांश (चिदात्मा) जब प्रकृति में प्रतिविम्वित होता है तब प्रकृति के दो रूप हो जाते हैं। स्पन्दनांशमय प्रकृति का जड अंश 'परा प्रकृति' कहलाता है और उसका अस्पन्दनशील चेतन अंश 'अपरा प्रकृति' कहलाता है। शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली में स्पन्दनांश को 'पर प्रणव' और अस्पन्दनांश को 'अपर प्रणव' का नाम दिया जाता है। 'पर प्रणव' वाच्य होता है और 'अपर प्रणव' वाचक। पहला अपवाद रूप है, और दूसरा अध्यारोप रूप।

मायावाद के अनुसार मिथ्या का निवारण करने के लिए अपवाद का प्रयोग होता है—"मिथ्याभूतपदार्थनिवारणार्थमुपदेशविशेषः" ‡। 'पर प्रणव' या 'परा प्रकृति' प्रकृति की वह अवस्था है जिसमें चैतन्य का योग नहीं हुआ रहता। चैतन्य के योग के बिना वह एकत्व-रूप रहती है। उसमें वहुत्व की कल्पना नहीं उत्पन्न हो सकती। एकत्व अद्वैत का स्वरूप है। मायावाद के अनुसार वहुत्व मिथ्या है और एकत्व सत्य (ब्रह्म) है। इसी के एकत्व-रूप उपदेश को मायावाद 'अपवाद' कहता है। 'परा प्रकृति' या 'पर प्रणव' के एकत्वमूलक अस्तित्व को समझाने के लिए 'सर्वदर्शन संग्रह' कहता है—"विकारापगमे सत्यं सुवर्णं कुण्डले यथा। विकारापगमो यत्र तामाहुः प्रकृतिं पराम्" †। सुवर्ण एकत्व की अवस्था है। उसके विकार, कुण्डल इत्यादि वहुत्व के परिचायक हैं। 'परा प्रकृति' एकत्व सम्पन्न सुवर्ण की अवस्था के समान वहुत्वमय विकार से अस्पृष्ट रहती है। इसीलिए एकत्वमय 'परा प्रकृति' या 'पर प्रणव' को मधुसूदन सरस्वती ने अपने 'प्रस्थानत्रय' में अपवादरूप कहा है, क्योंकि मायावाद का 'अपवाद' मिथ्या ज्ञान को दूर करने के लिए एकत्व का ही उपदेश करता है। मिथ्या का अपवाद, सत्य या ज्ञान है। मिथ्या के निवारण के वाद ज्ञान उत्पन्न होता है। मिथ्या की अपवाद-स्थिति को उत्पन्न करने के लिए जो ज्ञानात्मक उपदेश दिया जाता है उस उपदेश को, मिथ्या की अपवाद-स्थिति को उत्पन्न करने का हेतु वनने के कारण, अपवाद कहते हैं।

'अपरा प्रकृति' या 'अपर प्रणव' प्रकृति का चेतन अंश है। इसी के योग से वहुत्व की कल्पना उत्पन्न हो सकती है। इस कल्पना को वेदान्त मिथ्या कल्पना मानता है। वेदान्त के अनुसार वस्तु (सत्य) में अवस्तु (असत्य) की कल्पना करना अवस्तु का वस्तु पर आरोप करना 'अध्यारोप' कहलाता है। 'असर्पभूतरज्जौसर्पारोपवत् अजगद्रूपे ब्रह्मणिजगद्रूपारोपवत् वस्तुनि अवस्त्वारोपः अध्यारोपः' § जिस तरह रस्सी सर्प नहीं रहती, पर भ्रमवश मनुष्य उस पर सर्प का आरोप कर उसे सर्प समझने लगता है, उसी तरह ब्रह्म जगत् नहीं रहता, पर भ्रमवश उसे अज्ञानी मनुष्य जगत् समझने लगता है। सत्य ब्रह्म पर असत्य जगत् का आरोप अध्यारोप कहलाता है। मूलतः यह अध्यारोप ब्रह्म के एकत्व पर जगत् के बहुत्व का आरोप है। 'अपरा प्रकृति' बहुत्व कल्पना की ओर झुकी हुई ब्रह्म की स्थिति है, इसीलिए इस बहुत्व कल्पना की स्थिति को मधुसूदन सरस्वती ने अध्यारोप रूप माना है।

---

‡ न्यायकोश (महामहोपाध्याय भीमाचार्य द्वारा संपादित), पृष्ठ ५५। † सर्वदर्शन संग्रह (महामहोपाध्याय वासुदेव शास्त्री अभ्यंकर द्वारा संपादित), पृष्ठ ३०९। § सदानन्द-लिखित वेदान्तसार, अध्याय २, सूत्र ३२।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पराप्रकृति और अपराप्रकृति के संयोग से एक महाशक्ति उत्पन्न होती है। इसे शास्त्र विवृच्छक्ति कहता है। इस विवृच्छक्ति को, विकास की प्रकृति रखने वाली या व्यक्त होने की प्रकृति रखने वाली शक्ति की तरह समझ सकते हैं। यही शक्ति जगत् की उत्पत्ति का निकटतम कारण बनती है। परब्रह्म की ईक्षणा शक्ति जगत् का महाकारण है। ईक्षणा शक्ति की प्रेरणा से ही अभिव्यक्ति की यह शक्ति उत्पन्न होती है और अव्यक्त के भीतर से प्रकृति व्यक्त होने लगती है। ब्रह्म की यही शक्ति सृष्टि का आयोजन और संकल्प करती है। सृष्टिसंकल्प की यह प्रक्रिया 'पर्यालोचना' कहलाती है।

'पर प्रणव' या 'परा प्रकृति' के सान्निध्य से ही 'अपर प्रणव' या 'अपरा प्रकृति' में संकल्प की विवृति 'अभिव्यक्ति' प्रारम्भ होती है और वह 'अकार', 'उकार', और 'मकार' के तीन रूपों में विभक्त हो जाती है। यह संकल्प की विवृति 'एकोऽहं बहुस्याम्' के रूप में होती है। इसमें 'एकोऽहं' 'पर प्रणव' के एकत्व की और 'बहुस्याम्' 'अपर प्रणव' या 'अपरा प्रकृति' के बहुत्व की स्थिति है।

इस तरह अद्वैत ब्रह्म स्वयं प्रकृति के द्वारा तीन विभागों में अभिव्यक्त होता है। ये तीन विभाग ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेश्वरी शक्तियों के रूप में सृष्टि, स्थिति और लय के कार्य को प्रारम्भ करने के लिए अभिव्यक्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन्हीं तीन महा-शक्तियों के शासक देव हैं। इन तीन महाशक्तियों को शास्त्र 'सृष्टि संकल्पशक्तयः' भी कहते हैं।

सृष्टि, स्थिति और लय के अनंत रूप इन्हीं तीन शक्तियों के भीतर पैदा हुए संक्षोभों से उत्पन्न होते हैं। ये संक्षोभ ब्रह्म की ईक्षणा शक्ति के द्वारा उत्पन्न हुई विवृत् शक्ति की प्रेरणा से उत्पन्न होते हैं।

इसी संक्षोभ के कारण अकार में से एक सूक्ष्म ध्वनि उत्पन्न होती है। उकार में से एक स्थूल ध्वनि उत्पन्न होती है और मकार में से अत्यन्त स्थूल ध्वनि उत्पन्न होती है। इन्हीं ध्वनियों को यौगिक विज्ञान में 'नाद' कहते हैं।

नाद की इन तीन महाशक्तियों से क्रम से मनोवीज, प्राणवीज और अहंवीज उत्पन्न होते हैं। ये ही तीनों, क्रम से सृष्टि, स्थिति और लय के कारण-वीज हैं। इन्हीं वीजों को नादशास्त्र में विन्दु कहते हैं‡।

मूलप्रकृति की ये नादविन्दु-रूपिणी महाशक्तियाँ सीता के क्रियाशक्ति रूप से ही प्रकट होती हैं। सीता के इसी क्रियाशक्ति रूप से सृष्टि, स्थिति और लयात्मक विराट् ॐकार उत्पन्न होता है। इसी क्रियाशक्ति के भीतर से चतुर्वेद, छह वेदांग, मीमांसा और न्यायशास्त्र के विस्तार के रूप में वेदों के उपांग, शास्त्र के रहस्यों को समझाने वाले निबन्ध, धर्मशास्त्र, इतिहास-पुराण से प्रारम्भ करके वास्तुवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा आयुर्वेद इत्यादि पाँच उपवेद, दण्ड-नीति, व्यापार-विद्या तथा समाधि की मुक्तावस्था भी

---

‡ कल्याण, योगांक पृष्ठ ६१९–२०, श्री सुंदरलाल नाथामल जोशी, विद्यावारिधि, एम्०आर०ए०एस्० के लेख के आधार पर।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सीता की इसी क्रियाशक्ति से उत्पन्न होती है। यह सनातन ब्रह्ममय अनंत रूप धारण करने वाली क्रियाशक्ति भगवान् की साक्षात् शक्ति मानी जाती है। भगवान् के संकल्प-मात्र से सीता अपनी क्रियाशक्ति से जगत् को उत्पन्न करके स्वयं सगुण रूप में अवतीर्ण हो जाती हैं। भगवान् का संकेत पा कर समस्त व्यक्त जगत् और अव्यक्त देवादि जगत् की सृष्टि वे स्वयं अपनी क्रियाशक्ति से करती हैं। वे स्वयं अविनाशिनी हैं और भगवान् से पृथक् कभी नहीं होतीं.। निमेष, उन्मेष, सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान तथा अनुग्रह आदि समस्त शक्तियों में रहने के कारण वे भगवान् की अभिन्न शक्ति मानी जाती हैं।

सीता के इच्छाशक्ति रूप के तीन प्रकार हैं। पहला प्रकार योगशक्तिरूप है। यह स्वरूप प्रलय के समय भगवान् के दाहिने वक्षःस्थल पर श्रीवत्स (भृगु के चरण-चिह्न) का रूप धारण करके विश्राम करता रहता है। दूसरा प्रकार भोगशक्तिरूप है। इस रूप से सीता कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि तथा शंख से प्रारम्भ करके पद्म इत्यादि नव-निधियों के रूपों में निवास करती हैं तथा किसी भी प्रकार भगवान् की उपासना करने वाले भक्तों के लिए उपासना तथा उपभोग की अनंत प्रकार की सामग्रियाँ प्रस्तुत करती रहती हैं। तीसरा प्रकार वीरशक्ति रूप है। उनकी यह शक्ति चार भुजाओं वाली रहती है। ये भुजाएँ अभय और वरदान की मुद्राओं और दो कमलों से युक्त रहती हैं। इस शक्ति की समस्त देवता वन्दना करते हैं। सूर्य और चन्द्र दीपक बन कर इस शक्ति के पास प्रकाश करते हैं। राका और सिनी वाली (दुर्गा, शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, एक वैदिक देवी) देवियाँ इसे छत्र लगाती हैं। ह्लादिनी और माया इसकी चामरग्राहिणी हैं। स्वाहा और स्वधा पंखा झलती हैं। सब महात्मा इसकी पूजा करते हैं। सीता का यह वीरलक्ष्मी रूप है। कल्पवृक्ष के नीचे देवताओं से घिरी हुई इस वीरशक्ति का, चार श्वेत हाथी, अमृत से अभिषेक करते हैं।